Estd. in 2008
"बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ"

Jayoti Vidyapeeth Women's University, Jaipur

NAAC Accredited | UGC Approved | Recognized by Statutory Councils

मथुरा की भारतीय कला के ऐतिहासिक पहलू

A Synopsis

Submitted in
Partial fulfillment for the degree of
Doctor of Philosophy

Submitted by :
JV'n Km. Chhama Jain
JVR-II/2317

Submitted to :
JV'n Dr. Lalit Pandey
Department of Humanities and Social Sciences
Faculty of Arts and Social Sciences

FACULTY OF EDUCATION & METHODOLOGY
JAYOTI VIDYAPEETH WOMEN'S UNIVERSITY, JAIPUR

मथुरा की भारतीय कला के ऐतिहासिक पहलू

Topic	Page No.
परिचय	1-7
समस्या का कथन	8
साहित्य की समीक्षा	9
अध्ययन के उद्देश्य	10
परिकल्पना	11
शोध की क्रियाविधि	12-14
निष्कर्ष	15
अध्यायीकरण	16
संदर्भ सूची	17

परिचय

भारतीय कला स्थानीय निवासियों के मस्तिष्क और हस्त कौशल को समझने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। भारतीय कला की विषय-वस्तु भी भारतीय साहित्य, धर्म और दर्शन के समान ही समृद्ध है। ऐतिहासिक कला के वातयान द्वारा हम यहाँ की विभिन्न मूर्तियों, चित्रों और अन्य कलात्मक कृतियों के साक्षात दर्शन प्राप्त कर सकते हैं और उनमें छिपी हुई कल्पना एवम प्रतिभा को भी समझ सकते हैं। भारतीय कला विश्व कला के मंच पर अपना पद प्राप्त काफी देर से कर पाई किंतु अब उसके सौंदर्य और अर्थ को विद्वत वर्ग समझने लगा है।

भारतीय कला भारतवर्ष और भारतीयों के विचार, धर्म, तत्वज्ञान और संस्कृति का दर्पण है। भारतीयों के जनजीवन की पुष्कल व्याख्या कला के माध्यम से हुई है। भारतीयों का रहन सहन कै साथा, उनके भाव क्या थे, वे देवत्व के विषय में क्या सोचते थे, उनकी पूजा विधि क्या था आदि को भी कला के माध्यम से समझा जा सकता है। भारत के प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र में इसके निर्माण की ध्वनि सुनाई पड़ती हैं तथा एक युग से लेकर दूसरे युग में कला के निर्माण देखने को मिलते हैं।

तिथि क्रम- भारतीय कला का उषा काल यौं तो उच्च पुरापाषाण काल में ही हो गया था और यह एक निश्चित ऐतिहासिक कालक्रम का अनुसरण करते हुए मध्यपाषाण, नव पाषाण,सिंधु-सरस्वती संस्कृति, ताम्रपाषाण काल की यात्रा करती हुई प्रारंभिक ऐतिहासिक काल तक पहुँची जहाँ से इसके प्रमाण मथुरा से भी मिलने प्रारंभ हो जाते हैं जो अधोलिखितानुसार हैं -

- महाजनपद युग- (1200-600 ई.पू.)
- शिशुनागनंद युग- (600-326 ई.पू.)
- मौर्य युग- (325-184 ई.पू.)
- शुंग काल- (184-27 ई.पू.)
- यूरोपीय यूनानी, शक, कुषाण और सातवाहन काल-(200 ई.पू.से 300 ई.पू.)
- गुप्त, उत्तरगुप्त काल तथा पुष्पभूति वंश- (319 ई.पू.से 647 ई.पू.)

कला के आंदोलन एक समय जन्म लेकर फूलते-फलते एवं वृद्धि को प्राप्त होते हैं। वे अपनी कला व ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दे जाते थे। कला के तिथिक्रम को ऐसी उदार

भाव से देखना चाहिए। राजाओं की छत्र के पर्यवसान के साथ कला का प्रवाह विलीन नहीं हो जाता। ऊपर जिस तिथिक्रम का उल्लेख है उसमें सिंधु घाटी से लेकर नंदवंश के पूर्व तक भारतीय कला का आद्य युग है। इसके उपरान्त मौर्यकाल से हर्ष के समय तक उसका मध्य युग है जो उसके समुदीर्ण योवन का युग है। इसके भी दो भाग हो जाते हैं एक के अंतर्गत मौर्य, शुंग, कांण्व और सात वाहन युग की महान ऐतिहासिक कलाकृतियां तथा पूर्व युग में कला के अंकुर भिन्न भिन्न प्रदेशों में वृध्दि ले रहे थे जैसे सारनाथ, भरहुत, सांची, बोधगया, अमरावती, भाजा भी उसी के केंद्र थे। इस युग के उत्तरार्ध में प्रथम शती ई. से लेकर लगभग 7वी शती तक अर्थात्कनिष्क से हर्ष तक की कलाकृतियां आती हैं। हर्ष युग के बाद भारतीय कला का चरमयुग आता है। जिसे मध्यकाल (700 -1200) भी कहते हैं। इसके भी दो भाग हैं।

1. पूर्व मध्यकाल (700-900)
2. उत्तर मध्यकाल(900-1200)

<u>महाजन पद युग</u>

भारतीय कला में महाजन पद युग का महत्वपूर्ण स्थान है। यह आर्य सभ्यता का विकास कबिलो से शुरू हुआ था जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहते थे। अंत में वे ही "जनपद" नमक भूमियों में बस गए। जनका अर्थ है कबीला और पद का स्थान। अत: जनपद जातीय भूमियों के रूप इस युग के अंत में दिखाई देते हैं। यह भू सनिवासियों का अंतिम युग था। इस युग में ब्राह्मण, श्रोतसूत्र, पालीत्रिपिटक, जैन आगम और अष्टाध्याई आदि का उल्लेख आया है और भरा पूरा चित्र खींचा गया है। अतः सारा देश ही जन पद भागों में बंट गया था। जनपद लगभग यूनानीपुर राज्यों के समान थे पर उनकी अपेक्षा भूमि विस्तार बहुत बड़ा था। इसमें शासन करने वाले लोग क्षत्रिय जन पदिन कहलाते थे। पालि साहित्य में 13 महाजन पदों का उल्लेख होता है। जैन साहित्य में 24 जनपदों का उल्लेख होता है और पुराणों में भूवन कोष सूची में 175 जनपदों का उल्लेख है।

वैदिक या विद्यालयों में ज्ञान का मानदंड ऊंचा उठा तथा अनेक विद्याओं का विकास किया गया था। चरणों का विकास जनपद युग की विशेषता थी। इसमें व्याकरण, शिक्षा, ज्योतिष, आयुर्वेद, नाट्यशास्त्र, धर्म, वास्तु आदि अनेक शास्त्रों का विकास किया गया था। इसी के साथ स्रोत और

गृह कर्मकांडों की भी उन्नति हुई जिनकी सामग्री श्रोतगृहा सूत्रों में उपलब्ध है। इस युग में शिल्प व कला पर भी विशेष ध्यान दिया गया और अनेक रूपों में उनकी उन्नति हुई। जनपद युग में शिल्पियों का विकास और उनकी उन्नति का परिचय भी प्राप्त हुआ है। इसमें चारों वेदों का अध्ययन व अभ्यास शुरू हो गया था। इन चारों वेदों के नाम है। गंधर्ववेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद और वास्तुवेद। यहां के शिल्पियों को वास्तु शिल्प, मूर्ति, चित्र आदि का ज्ञान था। महाजन पद युग में राजाओं के मंडप व महल भी थे। यहां पर अनेक प्रकार की वस्तुएं बेचने की दुकान थी। इसमें ढोलाकर छत, खरबुजिया आकार की छत तथा गुमठ आकर की छत ये तीन प्रकार की छते गुफाओं में व पश्चिमी चैत्यग्रहों की गुफाओ में और मथुरा के शिल्प व भरहुत और अमरावती की उकेरियों में देखी जाती है। प्राचीन शिल्प के बहुत से दृश्यो में देखा जाता है कि राजप्रसाद का ऊपरी भाग सामने से कुछ हटा बनाते थे। तथा यह आगे से खुली हुई छत छोटी वेदिका से घीरी होती थी। इस प्रकार महल की मुख्य भाग तथा वेदिका के बीच में धूप व हवा के लिए खुली छत की योजना अपने आप हो जाती थी। यहां पर लोग उठते बैठते थे।

राजप्रसाद में तीन प्रकार की खिड़कियां भी थी-सिंह पंजर, गवाक्ष और वातयान अर्थात्शलाका वातपान, जाल वातपान वेदिका वातपान। जिन्हें वे अपनी इच्छानुसार प्रकाश तथा वायु के लिए खोल और बंद कर सकते थे। राजप्रसाद, चैत्यघर, बोधिघर और मंडप को बनाने की सामग्री यह थी कि काष्ठ जोथूनी, खंभे, धरन, छतोकी कड़ी, बरंगे, खिड़की, जाली, सोपान व भीतो की आटालियों की आता था। यहां पर ईट व पत्थरों का उपयोग बहुत कम था जैसा केवल खंभे की कुंभियों के लिए। मथुरा शिल्प में हुविष्क _बिहार से पत्थर की कुंभियों के बहुत से नमूने देखने को मिले हैं। जिन पर किसी समय लकड़ी की थूनिया या खंभे उठाए गए थे, जिनके फसाने के छेद पत्थर में कटे हैं।

जनपद युग में वास्तु विद्या की उन्नति का भरा पूरा चित्र राजप्रसाद, चैत्यघर, बोधिघर और मंडप आदि में यह ज्ञात होता है कि जनता के मन में ये रूप सुरक्षित रहें होंगे जिनका निर्माण तक्षा व वास्तु विद्या के चतुर आचार्य जानते थे। इनमें से अधिकांश शेलियों के प्रसाद मौर्य और शुंग युग में भी प्रचलित थे।

जैनों के अर्धमागधी आगम साहित्य भी पाली साहित्य के समय की है इससे मिली कला और वास्तु की साक्षी पाली साहित्य के समान महत्वपूर्ण है तथा वैसी ही सूचनाएं देती हैं। जनपद युग

में प्रसाद वास्तु व नगर वास्तु दोनों की बहुत उन्नति हुई थी उनके भौतिक अवशेष प्राप्त नहीं हुए क्योंकि उनमें से अधिकांश काष्ठ कर्म के नमूने थे। लेकिन यह निश्चित कह सकते है कि अनेक शिल्पो की परंपरा अस्तित्व में आ चुकी थी जैसे वास्तु विद्या, नगर मापन, गृह निर्माण, राजप्रसाद, मार्ग, सभा, दानशाला, गबाक्ष, मिट्टी के खिलौने, दंतकर्म, स्वर्णकार आदि। यह कला मौर्य युग से भी पहले अस्तित्व में आ चुकी थी। जनपद युग में मुद्राएं भी प्रचलित थी। 800 वर्षों की लम्बी अवधि के सिक्को, मुहरों, बर्तन, भांडो और पाषाण पर अंकित चिन्ह भारतीय कला की ही देन है और उसी की व्याख्या में सहायक अक्षर माला की भांति हैं।

कि इसी क्रम जनपद युग से ऐतिहासिक शिशु नागनंद युग (600-300ई.पू.) की कला को अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि इस युग में राजगृह का महादुर्ग सर्वप्रथम हमारे सामने आता है यह प्राचीन पाषाण घटित हैं। पत्थर व बड़े बड़े शिलाओ को जोड़कर महादुर्ग का बहुत विशाल चौड़ा रूप खड़ा किया गया था। प्राचीन राजगृह बृहद्रथ वंश की राजधानी थी और बृहद्रथ ने ही देवालय का निर्माण कराया था। बिम्बिसार द्वारा निर्मित नए राजगृह व आजातशत्रु द्वारा निर्मित पाटलीपुत्र की साक्षी से दुर्ग विधान की कला से प्रकाश डालते हैं दुर्ग कला का जो विन्यास सैंधर्व संस्कृति में निश्चित हो गया था लगभग वहीं कुछ परिवर्तनो के साथ शिशुनाग और मौर्य में भी प्राप्त होते हैं। लौरिया नंदनगढ़ में मिट्ठी के स्तूप, काष्ठ स्तम्भ व मातृ देवी की सुनहली ठप्पे से छपी हुई पत्री, पीप रह वास्तूप से प्राप्त स्फटिक की शरीर धातु मंजूषा तथा चिकने फड़े पत्थर के मातृ देवी की पूजा के लिए बनाए गए चक्र मिले थे ये सब शिशुनागनंद युग की देन हैं।

कि इसी क्रम शेशूनागनंद से मौर्यकाल (325-184 ई. पू.) को अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि 323 ईसा पूर्व में चंद्रगुप्त मौर्य के सिंहासन पर बैठने के साथ ही उस समय से राजनीतिक अवस्था का चित्र स्पष्ट होने लगता है। चंद्रगुप्त मगध साम्राज्य का स्वामी था तथा उसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। यह चक्रवर्ती सम्राट था और साम्राज्य भारत के विस्तृत भूभाग में फैला था। इसका विस्तार बाहिक से वंगतक एवं हिमालय से मैसूर तक था। यहां पर देश की राष्ट्रीय संस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रभाव हुआ। मौर्यकालीन संस्थाएं बड़ी स्थाई और प्रभुविष्णु थी। उनका सर्वोत्तम रूप मौर्यकाल में पाया जाता है। इस युग में दो कला के रूप भी देखने को मिलते हैं।

1) राजतक्षाओं की निर्मित कला
2) लोक कला की शैली।

यह दर्शन वाली यक्ष राजो की मूर्तियां-मथुरा, वाराणसी, विदिशा, पाटलिपुत्र, शिशुपालगढ़ आदि स्थानों से मिली है। इस लोक के अंतर्गत कुछ मिट्टी की मूर्तियां देखने को भी मिलती है। यहां पर खिलौने भी देखने को मिलते हैं, लेकिन इनमें अधिकांश मातृ देवी के हैं जोकि मथुरा अहिचछत्रा, पाटलिपुत्र, तक्षशिला आदि स्थानों में मिले हैं। यहां पर कला की प्रेरणा सम्राट देता है। यहां पर हमको महाराजप्रसाद के अवशेष भी देखने को मिलते हैं। वास्तुविद्या के अंतर्गत राजप्रसाद को तीन कक्षाओं में विभक्त किया था। प्रथमकक्ष में हाथी-घोड़ा के लिए गौशाला एवं सैनिकों के लिए कोठी या पाटिया बनाई जाती थी। द्वितीय कक्ष में सभा या आस्थान मंडप बनाया जाता था और तृतीय कक्ष में ध्वलगृह या प्रसाद का अंतपुर भाग रखा जाता था। इस वस्तुविन्यास की क्रम में कहीं कोई अंतर देखा नहीं गया। अजीर, सभा तथा राजकुल का गर्भसूत्र एक सीध में रहा होगा। अशोक ने मौर्यकाल को अपनी प्रजा में तथा विदेशियों के साथ स्थापित किया। उसने अपनी बुद्धि की सूझ बूझ से अपने शासन को नए सांचे में डाला था जिससे वहां की प्रजाओ को बहुत हित हो सके। उसने वास्तु और स्थापत्य संबंधि नवनिर्माण का महान कार्यक्रम निश्चित किया। यहां पर वेदिका, स्तंभ, स्तूप, गुफाएं, यक्षयश्री की मूर्तियां आदि देखने को मिलती है। अब हम यहां से मथुरा की कला का वर्णन करेंगे।

भारत की उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले में कला का बहुत विशाल केंद्र था। कला की समृद्धि का मुख्य समय पहली से तीसरी सती ईस्वी तक था, लेकिन उसके बाद भी 400 वर्षों तक मथुरा शिल्प वैभव का युग बना रहा। कुषाण युग में शिल्पकर्म और प्रतिमा निर्माण के लिए मथुरा की पहचान दूर-दूर तक हो गई थी। मथुरा के शिल्पियों की कर्मशालाएं जिस तेजी से कार्य कर रही थी, वह आश्चर्यजनक थी। उन्होंने मूर्तियों का निर्माण किया और उनमें से अधिकांश मूर्तियां आज भी सुरक्षित है। कुषाणयुग में बोधिसत्व, बुद्ध, नाग और यक्ष देवताओं की विशालकाय मूर्तियों का निर्माण द्वारा आगे बढ़ाया गया। अन्य जिलों में भी मथुरा की मूर्तियों का निर्यात होने लगा। सांची, सारनाथ, कौशांबी, श्रावस्ती, पंजाब, राजस्थान, बंगाल आदि देशों में मथुरा के लाल चक्तेदार पत्थर की मूर्तियां पाई गई है। मथुरा शिल्प में प्रयुक्त सुंदर मजिस्थिया रंग का पत्थर, रूपवास और सीकरी की खदानों से लाया जाता था। मथुरा में बौद्ध, जैन और ब्राह्मण

तीनों धर्मों का केंद्र था और यहां तीनों कलाओं के अवशेष मिलते हैं। मथुरा तीनों धर्मों का तीर्थस्थान था। बौद्ध और जैन के स्तूप व मंदिर और ब्राह्मण के देवस्थानो का निर्माण मथुरा में हुआ। मथुरा के संबंध में प्रतिमाएं, मूर्तियां, शिल्प आदि के नमूने मथुरा में रचित हुए। सौभाग्य से कला और शिल्प के लगभग पांच सहस्त्र अवशेष मथुरा में मिले हैं। उनमें से अधिकांश कुषाण युग के हैं। मथुरा कला का स्वर्ण युग था, जिसमें से सम्राट कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव का राज्यकाल था। जब यह कला परम उत्कर्ष को प्राप्त हुई। उसे युग की श्रेष्टता की तुलना में भारतीय कला के बहुत ही कम युग देखे जाते हैं। मथुरा की शिल्पियों ने भरहुत और सांची के आचार्यों को अच्छा और बारीक काम करने की नीति अपनाई किंतु इससे कला और भी विकसित हुई। शिल्पी नए रूप, रंग, आकार, विषय, शैली आदि में कार्य करने लगे। सौंदर्य की दृष्टि से मथुरा के कुशल शिल्पी और भी विकसित होने लगे। उनके हाथों में शिल्प कला एक ऐसी कला बन गई और उसकी शोभा का मानदंड बहुत ऊंचा उठ गया। मथुरा के शिल्पियों ने नवीन विषयों को अपनी कला में जोड़ा और कार्य किया।

मथुरा में तीन धर्म कला की बात की गई थी।

- बौद्ध कला
- जैन कला
- ब्राह्मण कला

बौद्ध धर्मकला - बौद्ध धर्मकला में बुद्ध की मूर्तियां देखने को मिलती है। बुद्ध मूर्ति का जन्म का प्रश्न धर्म और कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। बौद्ध की मूर्ति के निर्माण से पूर्व भक्ति धार्मिक आंदोलन का दीर्घकालीन अस्तित्व था। इस मूर्ति का जन्म कोई आकस्मिक और असंबंध कोई घटना न थी। इसके पीछे कुछ कारण थे। बौद्ध कला का जन्म गंधार शैली में हुआ था। मथुरा में इस विषय पर मतभेद रहा है। बौद्धकला में वे सभी कला माध्यम है जिनमें महात्मा बुद्ध, बोधिसत्व आदि का निरूपण है। बौद्ध धर्म में मूर्ति निर्माण से पूर्व भक्ति आंदोलन का आरंभ हो गया था, किंतु कुछ अवधि तक प्रतीकों द्वारा बुद्ध का अंकन किया जाता था। जब प्रतीक पूजा अपने चरम सीमा पर पहुंच गई। तब मूर्ति के लिए पूरा अवसर उपस्थित हो गया। भरहुत, सांची और बोध गया में बुद्ध की कोई मूर्ति देखने को नहीं मिलती है। यह शुंगकाल का समय है

लेकिन मथुरा में मूर्ति और प्रतीक दोनों का अस्तित्व पाया जाता है। मथुरा के धार्मिक और कलात्मक इतिहास की विशेषता है। इस प्रश्न की मीमांसा के लिए ध्यान में रखना आवश्यक है।

जैन धर्मकला-जैन धर्म का प्राचीन केंद्र मथुरा था। बौद्ध व ब्राह्मणों के समान जैनों ने यहां अपने धर्म और कला के केंद्र स्थापित किए थे। ज्ञात होता है कि मथुरा के जैन लोग बहुत संपन्न और वैभवशाली थे जैसे उनके बनवाए स्तूपों से सूचित होता है। मथुरा में जैन धर्म की परंपरा अभी तक चली आई है। कंकाली टीले के खुदाई से मूर्तियां और वास्तुखंड प्राप्त हुए हैं। ये किसी समय मथुरा के दो स्तूपों में लगे हुए थे। जिन प्रभु सूरी के अनुसार प्राचीन स्तूप का निर्माण कुबेरा यक्षी ने किया था। भगवान सुपार्श्वनाथ के सम्मान में इसका निर्माण कराया गया था। कालांतर में 23में तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समय में उन स्तूपों पर ईंटों का कंचुक या खोल चढ़ाया गया था। कुषाण कला में जो मूर्ति को प्रधान मानकर कला का नया स्वरूप विकसित हुआ, उसके अनुसार जैनों ने एक नया स्तूप बनाने का निश्चय किया, जिसमें तीर्थंकर की मूर्ति को प्रधानता दी गई। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दूसरे जैन स्तूप में मिले हैं। दूसरे जैन स्तूप में जिन पर कुषाण संवत में तिथियां दी गई है। हमारा ध्यान उन तीर्थंकर एवं अन्य मूर्तियों की ओर जाता है जोन ए रूप में स्थापित की गई थी। जैसे उस युग की प्रथा थी। जैन, बौद्ध और ब्राह्मण सभी अपने थी? देवस्थानो व धर्मों का पालन कर रहे और अपने थी? रीति रिवाज के अनुसार पालन कर रहे थे। कनिष्क और हुविष्क के राज्यकाल में विशेष रूपसे ऐसा हुआ।

ब्राह्मण धर्म - ई.पू. की कई शतीयों में मथुरा भक्ति धर्म का केंद्र बन गया। भक्ति धर्म के मुख्य देवता भगवान कृष्ण थे। उन्हें मनुष्य रूप में ईश्वर का अवतार माना जाता था। कृष्ण नारायण विष्णु के अवतार माने जाते हैं। ऋग्वेद में विष्णु पूजा के बहुत उल्लेख मिलते हैं। पाणिनि के अष्टाध्याई में वासुदेव और उनके साथी अर्जुन की भक्ति का उल्लेख है जिनके भक्त वासुदेव और अर्जुन कहलाते थे। भगवान कृष्ण की पूजा पाणिनि के समय लगभग पांचवी शती ईसा पूर्व में प्रचलित थी। मथुरा की शिल्प कला में ब्राह्मण धर्म संबंधी देवो की बहुसंख्यक मूर्तियों का निर्माण किस कारण से हुआ। वासुदेव के स्थान को ऊंचा समझा जाता है। ब्राह्मणों ने अपने मंदिरों का निर्माण कराया था, जिन्हें देवगृह कहते थे। मोरा के लेख में शैलदेव गृह शब्द महत्वपूर्ण है। पतंजलि ने राम और केशव के प्रसाद का उल्लेख किया है। कालांतर में वेदिका में चार द्वारा भी बनाए जाने लगे जैसा मथुरा के चतुर्थ शालतोरण वेदिका शब्द से सूचित होता

है। यह भी निश्चित है कि कालांतर के प्रसादो में वासुदेव और उनके साथी बलराम, प्रधुमन, अनिरुद्धआदि विष्णुवीरों की मूर्तियां भी स्थापित की जाने लगी। कुषाणकाल के आरंभ में ब्राह्मण धर्म के देवताओं की अनेक मूर्तियां मथुरा शिल्प में बनाई जाने लगी। धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ी और गुप्तकाल में अपने पूरे विकास में पहुंच गई।

कि इसी क्रम में मौर्ययुग से शुंगकाल (184-27 ई.पू.) की कला को अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि भारतीय इतिहास में शुंगकाल की कला के क्षेत्र में देश के अनेक के दो में पाषाण घटित शिल्प व स्थापत्य का व्यापक प्रचार तथा वृद्धि हुई। स्तूप, तोरण वेदिका व मूर्तियों की रचना के लिए पत्थर का प्रयोग सामान्य सी बात हो गई थी। भरहुत, सांची व अमरावती जैसे महाचैत्य या बड़े स्तूप शुंगयुग मे बने। बोधगया के वज्रआसन के चारों ओर पत्थर की वेदिका और उसके बीच में चार तोरण शुंगयुग की देन हैं। पत्थर में नाना भांति के नक्काशी, अलंकरण और मूर्तियां इसी काल के शिल्पियों की रचनाएं हैं जिसमें देश के आगे आने वाले मार्गीय शिल्प का सूत्रपात है। लोगों में यक्ष, नाग आदि लोकदेवताओं के लिए जो धार्मिक मान्यताएं एवं बौद्ध धर्म के प्रति जो आस्था थी, उनका अंकन एक साथ पत्थर पर किया जाने लगा और उसमें कलात्मक सौंदर्य व विचित्र नई शोभा की सृष्टि की गई। यहां पर विशाल मूर्तियों की रचना की गई और सुंदर व शोभायुक्त मूर्तियां भी उत्तीर्ण की गई। एक ओर वास्तुशास्त्र के नए विधान स्थिर किए गए, दूसरी ओर मूर्तिशिल्प में लालित्य व रूप विधान का भी विकास हुआ। शुंगकालीन कला में रसतत्व और आनंद को भी विशेष स्थान दिया गया था। शुंगकला की यह विशेषता है कि उसमें सैकड़ो मार्गों से लोक के प्राणवंत जीवन को अभिव्यक्त होने का स्थान मिला है। शुंगकला में अधिक अलंकरण की गूंज सुनाई देती है। अशोक ने जिस प्रकार के स्तूपों का निर्माण आरंभ कराया था उनका ओर अधिक विकास शुंगयुग में हुआ। स्तूप, चैत्यघर, बिहार, स्तंभ, चतुर्शाल वेदिका और देवस्थान ये सब इसी कला की देन है। भारतीय कला में तीन प्रकार के महान अवशेष हैं। स्तूप, चैत्यगृह और देवमंदिर। मथुरा से विदिशा होकर प्रतिष्ठान को जाने वाले यात्रा पथ पर भी महाचैत्य का निर्माण किया गया जो वर्तमान सांची का स्तूप है।

कि इसी क्रम में भायूरोपीय यूनानी, शक, कुषाण और सात वाहनकाल (200-300 ई. पू.) की कला का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि सबसे बड़ा आंदोलन, नवीन शैलियों व

कलाओं का प्रयोग सात वाहन युग में हुआ था। पूर्व युग में सात वाहन सम्राट बौद्ध व जैन भिक्षुओं के प्रति सहानुभूति की दृष्टि रखते थे। कृष्णा नदी के कांठे में सर्वप्रथम विशाल स्तूपों की स्थापना अमरावती में 200 ई. तक एवं इक्ष्वाकुवंशीय राजा और रानियों के युग में 300 ई. तक जारी रही। सात वाहनों ने शको से राजनीतिक शक्ति छीन ली और उसके बाद दो शतियों तक उनके संघर्षों के उतार-चढ़ाव में आंखमिचौली जैसा खेल होता रहा। आंध्र में 400 वर्षों तक शक्ति पूरी तरह सात वाहनों के अधिकार में रही और उसके बाद वह शक्ति इक्ष्वाकु राजाओं को प्राप्त हुई और उन राजाओं ने महास्तूपों का निर्माण कराया था। इस युग में ऐतिहासिक कला की गूंज आती है। इस युग में चैत्यगृह, स्तूप, चट्टानों को काटकर कोठरियां, मूर्तियां, गर्भशालाएं आदि भी देखने को मिलते हैं। यहां के शिल्पी बहुत सी कलाओं से परिचित थे।

समस्या का कथन - मथुरा का नाम स्वयं ऐतिहासिक कला तथा सांस्कृतिक एकता का सूचक हैं। यहां केकण थी? में कला, भक्ति, संस्कृति आदि के गुण रचे बसे हैं। यहां के आचार्यों व शासकों ने ऐतिहासिक कला की धरोहर को बचाने के प्रयास किए उसी प्रयास से शिल्पियों की कला, संस्कृति तथा धर्म आदि को संरक्षण प्रदान किए। मथुरा की ऐतिहासिक कला के विभिन्न पहलू में स्तूप, यक्षयक्षी मन्दिर, मूर्तियां, कला, संस्कृति आदि का मुख्य केन्द्र रहा है। सिन्धु सरस्वती से लेकर वैदिक सभ्यता व मौर्यकला की तीन शैली और मथुरा की कला के अवशेष यहां देखने को मिलते हैं। मथुरा के शिल्पियों, विद्वानों, आचार्यों तथा कलाकारों आदि का बहुमुखी विकास हुआ। मथुरा में कला, भक्ति, धर्म, संस्कृति, तीर्थस्थल तथा ऐतिहासिक मंदिर आदि एक साथ प्रभाहित रही। कला, भक्ति, धर्म एवम सांस्कृतिक दृष्टि से मथुरा की कला भक्ति और संस्कृति में प्रमुख भूमिका रखती हैं। इसके महतव को हम कम नहीं माप सकते। आज भी यहां की ऐतिहासिक, कलात्मक, भक्ति धरोहर को बचाय रखने की आवश्यकता है अगर इसी तरह इसकी अवहेलना होती रही तो यह धरोहर समाप्त हो जायेगी।

साहित्य की समीक्षा-

1. वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला, इस पुस्तक में भारतीय कला को दर्शाया गया है। इसमें सिन्धुघाटी की कला, वैदिक कला, मौर्य कला, शैशुनाग नंदयुग की कला, शुंगकला, मथुरा की कला, गंधारकला, आदि के बारे में जानकारी प्राप्त होती हैं। इसमें मूर्तियों, दुर्गों, मंदिरों आदि की भी जानकारी दी गई है।

2. सी.एस. वर्मा, मथुरा- भगवान कृष्ण की दिव्यभूमि, इस पुस्तक में ऐतिहासिक नगरों, उनके गौरव और संस्कृति पर बात की गई है। इसमें मथुरा की कला, मंदिर, संस्कृति आदि की जानकारी मिलती हैं। इसमें मथुरा और राधाकृष्ण की विशेषताओं पर भी उल्लेख किया गया हैं।
3. एन. पी. जोश, मथुरा मूर्तियां- एक सचित्र पुस्तिका, इस पुस्तक में मथुरा की महत्त्वपूर्ण कला एवं मूर्तियों को शामिल किया गया हैं। इसमें मथुरा के राजकीय संग्रहालय की गई है। जिसमें अनोखी मूर्ति कला प्लेटों आदि को दर्शाया गया हैं। यहां पर जैन तीर्थंकरों, बुद्ध और ब्राह्मण देवताओं की भी मूर्तियां हैं।
4. आर. सी. शर्मा, मथुरा कला एवं संग्रहालय की महिमा, इस पुस्तक में मथुरा की कला के मानचित्र को दर्शाया गया हैं। इसमें मथुरा कला की महत्वपूर्ण तिथियां, संस्कृति, संग्रहालय आदि विशेषताओं का विवरण दिया गया हैं। यहां पर गंधार की मूर्तियां, कुषाण कला, गुप्तकाल की मूर्तियां, सिक्के आदि की जानकारी मिलती हैं।
5. आर. सी. वर्मा, मथुरा की बौद्धकला, इस पुस्तक में मथुरा को कई अनेक नाम से मशहूर किया गया हैं जैसे कि ब्रज भूमि, संस्कृति की भूमि, कृष्णभूमि आदि। इसमें मथुरा के भौगोलिक रूप की भी बात की गई है। यहां पर बुद्ध की छवि को भी दर्शाया गया हैं और बुद्ध के विकास लिए मथुरा का योगदान कितना महत्त्वपूर्ण था। इसमें मथुरा की कला के साथ सी. शर्मा गांधार, अमरावती, सारनाथ आदि कला की विवेचना की गई है। यहां पर स्तूप, दुर्ग, मूर्तियों, संग्रहालय आदि की जानकारी प्राप्त होती हैं।
6. अर्चना अस्थाना और अश्विनी अस्थाना, बौद्ध कला- साँची से प्रारंभिक मथुरा तक, इस पुस्तक में बौद्धकला के आरम्भ की बात की गई है। इसमें स्तूप की वास्तु कला की विशेषताओं को सामने रखा गया हैं। यहां पर बौद्धकला के साथ भरहुत के स्तूप की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका हैं। इसी में मथुरा की भारतीय कला की शुरुआत को भी दर्शाया गया हैं साथ ही शुंग, कुषाण, मौर्य आदि कला के विकास और परिवर्तन का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

अध्ययन के उद्देश्य - प्रस्तुत शोध के शीर्षक के अनुरूप निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखा गया है। शायद वर्तमान अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य मथुरा की कला को सामने लाना

है। अध्ययन का उद्देश्य इन कला की भक्ति, संस्कृति, महल, दुर्ग तथा मन्दिर का स्थान, उनका महत्व, मंदिरों व कला की संरचना और क्षेत्र की रक्षा के लिए वे संरचनाएं कितनी प्रासंगिक थी, इसका भी पता लगाना है। इसके साथ ही वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य उस क्षेत्र के आर्थिक पहलू का पता लगाना है जिसने १६वी से २१वी शताब्दी के दौरान मथुरा में इन भारतीय कला के मंदिरों, दुर्गो, महलों आदि के निर्माण में मदद की।

1) किले, दुर्ग, महल, मंदिर का वैज्ञानिक अध्ययन।
2) रक्षा वास्तु कला के बारे में जानना।
3) किले, दुर्ग, महल, मंदिर की विशेषताओं के बारे में जानना।
4) किले, दुर्गो, महलों, और मंदिरों के निर्माण में निरंतरता तथा परिवर्तन।

परिकल्पना- यह शोध मुख्य रूप से १६वी से २१वी शताब्दी के बीच मथुरा के प्रमुख किले, दुर्ग, महल व मंदिर की वास्तुकलाओं की □□□□□□□□□□ और विकास पर केंद्रित होगा।

1. उन भौगोलिक स्थितियों पर इन किले, दुर्ग, महल, मंदिर आदि के निर्माण के मुख्य कारण क्या थे?
2. 16वी से 21वी शताब्दी के बीच में क्या क्या विकास हुआ?
3. इन किले, दुर्ग, महल व मंदिर का एतिहासिक महत्व क्या थे?
4. इन किले, दुर्ग, महल व मंदिर के निर्माण में लोगों की क्या भूमिका थी?

अनुसंधान क्रियाविधि - विषय के शोधकार्य में मुख्य रूप से संबंध सामग्री का संग्रहण, उसका परीक्षण, वर्गीकरण और विश्लेषण के बाद सटीक निष्कर्ष पर पहुंचने की प्रक्रिया अपनाई जाती है। इस प्रक्रिया को निर्देशित करने की प्रथा भी इसलिए प्रचलन में हैं क्योंकि इस प्रक्रिया के दौरान शोधार्थी शोधकार्य के प्रति जागरूक और सतर्क रहकर नियमित रूप से उसको सम्पन्न कर सकें। नियमित क्रियाविधि अपनाकर निकाले गए सटीक निष्कर्ष हमेशा प्रमाणिक, भावी शोधार्थियों के लिए प्रेरक और नए आयाम स्थापित करने में सदैव उपयोगी सिद्ध होते है।

शोध की क्रियाविधि - शोध की क्रिया विधि इस प्रकार हैं-

1. विषय विशेष से संबद्ध सामग्री का संकलन करना।

2. शोधकार्य की दृष्टि से उस सामग्री का परीक्षण या प्रमाणीकरण और ग्राहत व अग्राहत सामग्री का विवेकानुसार निर्णय किया जाना।
3. शोध विषय की कसौटी पर संग्रहीत और ग्राहा सामग्री का विश्लेषण कर उनका वर्गीकरण करना।
4. वर्गीकरण की गई सामग्री के आधार पर निर्णय करके सटीक निष्कर्ष निकालना।

शोधकार्य में प्रयुक्त होने वाली सामग्री का वर्गीकरण करने के पश्चात् उसका आंकलन, विषय की कसौटी परीक्षण और गहन अध्ययन के साथ उसके निष्कर्ष पर पहुंचने की प्रक्रिया संपन्न की जाती है। जिसमें भाषा शैली की एकरसता और सन्दर्भ की अर्थव्यवस्था का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना आवश्यक है। शोधार्थी के निष्कर्ष सही तथा भावी शोधार्थियों के लिए प्रेरणाप्रद हो, इसके लिए वर्गीकृत सामग्री की उपलब्धता होनी आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध की प्रेरणा एवं नवीनता - प्रस्तुत शोध प्रबंध की प्रेरणा कला विज्ञान प्रोफेसर ललित पांडे, विजुअल आर्ट विभाग, जयोति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय से प्राप्त हुईं। इस प्रबंधन में प्रस्तुत विषय मथुरा की भारतीय कला के ऐतिहासिक पहलू पर अभी तक विस्तृत रूप से शोधकार्य सम्पन्न नहीं हो सका है। मथुरा की कला को योगदान प्रदान करने वाले राजा और महाराजाओं एवं शिल्पियों का वर्णन, उनके उद्देश्य, कार्य आदि की दृष्टि से निर्मित महल, दुर्ग, मन्दिर, किले आदि की स्थापना को उद्धद्रत कर उनकी अबेसना करना शोधार्थी के शोध का विषय है। जोकि भविष्य में शोधार्थियों के लिए प्रेरणास्प्रद सिद्ध होगा। इस दृष्टि से यह शोधकार्य सर्वथा नवीन है।

निष्कर्ष-

मथुरा की भारतीय कला में सभी धर्मों का समन्वय देखा जा सकता है। यहां पर कई प्राचीन नगरों का निर्माण हुआ तो वहां पर बसने वाले लोगों ने अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के अनुसार कई देवालयों और भवनों का निर्माण करवाया जिनकी कारीगरी दर्शनीय हैं। नगरों की सुरक्षा के लिए- मथुरा यहां के लोगों ने नगर, पर कोटो तथा कई दुर्ग व किले का निर्माण करवाया। अपने पूर्वजों की स्मृति में कुआ, नलों व टांको का भी निर्माण करवाया गया। मथुरा के लोगो में भक्ति और संस्कृति भी देखने को मिलती है। यहां पर कई धर्म देखने को मिलते है। मथुरा की

भारतीय कला में यहां पर बौद्ध धर्मकला, जैन धर्मकला, ब्राह्मण धर्मकला आदि के विभिन्न रूप व कलाए देखी जा सकती हैं।

अध्यायीकरण-

1. प्रस्तावना
2. मथुरा की प्राचीन स्थापत्य कला का इतिहास
3. मथुरा की श्रीकृष्ण जन्मभूमि का स्थापत्य कला, मूर्ति व संस्कृति और जल भंडारण
4. मथुरा के वृंदावन में मन्दिर की स्थापत्य कला, मूर्ति व संस्कृति तथा जल भंडारण और वितरण
5. मथुरा के गोकुल में मन्दिर की स्थापत्य कला, मूर्तिकला व जल भंडारण
6. मथुरा के गोवर्धन मे मन्दिर की स्थापत्य कला, मूर्ति व जल भंडारण और वितरण
7. मथुरा के बरसाना में दुर्ग, मन्दिर व स्थापत्य, मूर्ति कला व जल भंडारणऔर वितरण
8. मथुरा के जैन मंदिर (जिनालय) स्थापत्य कला, मूर्तिकला व जल भंडारण
9. मथुरा जिले में नंदगांव के दुर्ग, मन्दिर की स्थापत्य कला, मूर्तिकला व चित्रकला का तुलनात्मक अध्ययन

संदर्भ सूची-

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला, पृ. सं. 20-59, 103-108, 117-129,262-285
2. लाल, बी.बी., भारतीय सभ्यता की जड़ें कितनी गहरी हैं?, पृ. सं. 129-131
3. सिंघानिया, नितिन, भारतीय कला और संस्कृति, पृ. सं. 63
4. मैकइंटॉश, जेनआर., प्राचीन सिंधु घाटी, पृ. सं. 91
5. अरोड़ा, नमित, भारतीय- सभ्यता का संक्षिप्त इतिहास, पृ. सं. 189-192
6. मुकर्जी, राधाकमल, भारतीय सभ्यता का इतिहास- प्राचीन और शास्त्रीय परंपराएं, पृ. सं. 132-145
7. जैन, मीनाक्षी, वासुदेव कृष्ण और मथुरा, पृ. सं. 93-97
8. प्रसाद सिंह, अंबिका, मथुरा वृंदावन के स्मारक, पृ. सं. 58-63
9. गुप्ता, विनयकुमार, मथुरा- एक कला और पुरातत्व अध्ययन, पृ. सं. 120-135, 185-189
10. तिवारी, शशि, हड़प्पा सभ्यता और वैदिक संस्कृति, पृ. सं. 173-178
11. शर्मा, आर.सी., मथुरा कलाऔर संग्रहालय का वैभव, पृ. सं. 25
12. वर्मा, सी.एस., मथुरा- भगवान कृष्ण की दिव्यभूमि, पृ. सं. 126
13. ग्रोसे, ई.एस., मथुरा- एक जिला संस्मरण, पृ. सं. 132
14. शर्मा, अरुणा, मथुरा का इतिहास, पृ. सं. 82
15. जोशी, एन.पी., मथुरा मूर्तियां, पृ. सं. 22
16. शर्मा, आर.सी., मथुरा की बौद्धकला, पृ. सं. 35
17. ब्रिल, मथुरा में प्रारंभिक पाषाण मूर्तिकला का इतिहास, सी. 150 ईसापूर्व-100 ई., पृ. सं. 59
18. शर्मा, आर.सी., मथुरा मूर्तिकला, पृ. सं. 120
19. ग्रोसे, एफ.एस., मथुरा वृंदावन- भगवान कृष्ण की रहस्यमय भूमि, पृ. सं. 124
20. शर्मा, वी.के., जैन धर्म का इतिहास, पृ. सं. 84-89
21. बैंकर, अशोक के., मथुराकेभगवान, पृ. सं. 22
22. पोरवाल, डॉ. रेणुका जे., मथुरा में जैन स्तूप- कला और प्रतीक, पृ. सं. 78
23. मारियो, बुसागली, भारतीय कला के 5000 वर्ष, पृ. सं. 56